



ज्ञानविद्या

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)

3049-2327(Print)

IIFS Impact Factor-2.25

Vol.-2; Issue-1 (Jan.March) 2025

Page No.- 147-151

©2025 Gyanvidha

www.journal.gyanvidha.com

डॉ. अमरेन्द्र कुमार वर्मा

सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र
विभाग, श्री महंथ सदानन्द गिरि
महाविद्यालय, शेरघाटी,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया.

Corresponding Author :

डॉ. अमरेन्द्र कुमार वर्मा

सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र
विभाग, श्री महंथ सदानन्द गिरि
महाविद्यालय, शेरघाटी,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया.

बौद्ध साहित्य में वर्ण एवं जाति व्यवस्था के विरुद्ध भगवान् बुद्ध की सामाजिक क्रान्ति" एक अनुशीलन

तत्कालीन समाज में वर्ण एवं जाति व्यवस्था का स्वरूप विकृत हो चला था। वर्णों का विभाजन जो कर्म के आधार पर हुआ था, वह टूट रहा था एवं जातियों का स्वरूप ग्रहण कर रहा था। समाज में द्विज वर्णों की स्थिति सामान्यतः ठीक थी। परन्तु अन्य वर्णों एवं जातियों की स्थिति दयनीय थी। उनकी आधारभूत मूल आवश्यकताओं की पूर्ति कठिनाता से हो पाती थी। उनके पास न तो रहने के लिये मकान थे, न खाने के लिये भोजन: न पहनने के लिये वस्त्र थे, न आने-जाने के लिये यान (सवारी) थी और न प्रकाश के लिये तैल ही था। यों, उनका जीवन निराशामय जीवन था। वे समाज में अस्पृश्य (अछूत) समझे जाते थे। उनको देखना भी 'पाप' समझा जाता था। उनके लिये शिक्षा की व्यवस्था भी नहीं थी। एक तरफ यह स्थिति थी तो दूसरी तरफ ब्राह्मणों का कर्मकाण्ड इतना अधिक प्रबलतया व्याप्त था कि समाज के अन्य वर्णों के लिये यह अभिशाप बन गया था। समाज में धार्मिक रुढ़िवादिता (पोंगापन्थी) व्याप्त थी, जो समाज के अन्य वर्णों एवं जातियों के लिये भारस्वरूप हो चली थी। उनसे बलपूर्वक यज्ञ आदि कर्म कराये जाते थे, यज्ञों में पशुओं की बलि दी जाती थी। हिंसा को महत्त्व दे दिया गया था। वर्णों में एक वर्ण ब्राह्मण ही राजनीति एवं समाज का एकमात्र उत्तरदायी (ठीकेदार) बन गया था। यों, समाज में असमानता एवं अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी। समाज के लिये यह स्थिति भयङ्कर एवं अहितकर थी। जिसे देखकर किसी की भी आत्मा द्रवित

हो सकती थी। इस स्थिति का दृढ़ता से (बलपूर्वक) विरोध करने के लिये ये महामानव शाक्यपुत्र गौतम बुद्ध आगे आये।

उन्होंने वर्णहीन एवं वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिये एक आन्दोलन छेड़ा। जिसका मुख्य मन्तव्य वर्ण एवं जाति व्यवस्था का तथा कर्मकाण्डों का विरोध एवं समाज में एक जाति (मानव जाति) का सर्जन करना था। इसके सन्दर्भ में सङ्घ की भी उन्होंने स्थापना की। बौद्ध साहित्य इनके आन्दोलन का पूर्णतः प्रतिनिधित्व करता है।

बौद्ध साहित्य का अवलोकन करने पर उनकी जातिसम्बन्धी अवधारणा स्पष्ट हो जाती है। वर्ण-जाति-व्यवस्था के सम्बन्ध में मज्झिमनिकाय के वासेट्टसुत्त में इस प्रकार कहा गया है-

भगवान् कहते हैं- "वाशिष्ठ ! तुम्हें मैं क्रमशः यथार्थता कहता हूँ। प्राणियों की जातियों में एक दूसरे से जाति का भेद है। वृण और वृक्ष में भी जानते हो (इसके लिये) वह प्रतिज्ञा नहीं करते, जाति का लिङ्ग है, उनमें जातियों एक दूसरे से मित्र हैं। फिर कीट-पतङ्ग से पीटी तह जाति का लिक है। उनमें छोटे-बड़े चौपायों में भी तुम जानते हो. जाति का लिङ्ग है उनमें। "जैसा इन जातियों में जाति का भिन्न भिन्न लिङ्ग है, इस प्रकार का जाति-लिङ्ग मनुष्यों में पृथक नहीं है न केशो में, न सिर में, न कान में, न आँख में, न मुख में, नासिका में, न होठ में और न भी में।.....

"मनुष्यों में भेद केवल संज्ञा में है। मनुष्यों में

जो गोरक्षा से जीविका करता है ऐसे को 'कृषक' जानो, ब्राह्मण नहीं।..... "मनुष्यों में जो ग्राम या राष्ट्र का उपभोग करता है, वाशिष्ठ। ऐसे को 'राजा जानो, ब्राह्मण नहीं।"²

उपर्युक्त उद्धरण से भगवान् बुद्ध की धारणा स्पष्ट होती है कि मानवमात्र एक है। उसमें कोई प्रकृतिप्रदत्त जाति या वर्ण का अन्तर नहीं है। कर्म मुख्य हैं। कर्म के आधार पर ही मनुष्य के वर्ण की पहचान हो सकती है। भगवान् बुद्ध जातिवाद को समाप्त करके मानववाद की स्थापना करना चाहते थे। समाज में जो जातिगत भेद है वे उसे मिटाना चाहते थे। संयुक्तनिकाय में वे सुन्दरिण भारद्वाज से कहते हैं कि "जाति मत पूछो, कर्म पूछो।"³ इसे भी स्पष्ट होता है कि वे जाति-भेद को मिटाना चाहते थे। वे एक मानव जाति की कल्पना करते थे।⁴ मानवों में उनको परस्पर कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था। उनके अनुसार सभी वर्षों के लोगों के शरीर के अङ्ग एक समान है।⁵ उस समय समाज में ऐसी धारणा थी कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र क्रमशः श्रेष्ठता के अनुसार परिचर्या करे। बुद्ध ने इसका विरोध करते हुए मज्झिमनिकाय के एसुकारिसुत्त में इस प्रकार कहा है- "ब्राह्मण। न मैं सबको परिचरणीय (सेवनीय) कहता हूँ और न मैं सबको अपरिचरणीय (असेवनीय) कहता हूँ। ब्राह्मण। जिसका परिचरण करने से (परिचर्या के हेतु) श्रद्धा बढ़ती है, शील बढ़ता है, श्रुत बढ़ता है, ज्ञान बढ़ता है उसे मैं परिचरणीय (सेवितव्य) कहता हूँ।"⁶

इसी सुत्त में भगवान् बुद्ध आर्य धर्म को पुरुष

को स्वधन प्रज्ञापन करते हैं।⁷ उन्होंने इन प्रसङ्गों से समाज में व्याप्त जातिगत श्रेष्ठता का विरोध किया है। साथ ही प्राचीन धर्म एवं संस्कृति को सम्मान भी दिया है। भगवान् बुद्ध स्पष्ट रूप से समाज में व्याप्त कर्मकाण्डों के भी विरोधी थे। संयुक्तनिकाय के सुन्दरिक सुत्त में इस प्रकार आया है कि-

"हे ब्राह्मण! लकड़ियां जला-जलाकर

अपनी शुद्धि होना मत समझो, यह बाहरी आडम्बर (ढोंग) मात्र है।.....

"हे ब्राह्मण! अभिमान तुम्हारे लिये अनाज है।"⁸

इससे परिलक्षित होता है कि भगवान् बुद्ध के मत में यज्ञ आदि करके शुद्धि नहीं की जा सकती। यह सब बाह्य आडम्बर है। अध्यात्म की ज्योति से ही पवित्रता आ सकती को उचित पथ निर्दिष्ट करना चाहते थे। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट है कि न केवल ब्राह्मण ही सत्तापूर्ण पिण्ड ले, नदी पर जाकर मैल धो सकता है अपितु क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र भी इस प्रकार मैल धो सकते हैं।⁹ अर्थात् स्वच्छता एक वर्ण ही नहीं आपत सभी है। इससे यह हो जाता है कि भी स्पष्ट छुआछूत के भी वे विरोधी थे।

भगवान् बुद्ध सुत्तनिपात के पराभवसुत्त में इस प्रकार कहते हैं— "जो नर जाति, धन और गोत्र का गर्व करता है और जो अपने बन्धुओं का अपमान करता है वह अपनी अवनति का कारण बनता है।"¹⁰ इस उद्धरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गोत्र जाति एवं धन पर मनुष्य को गर्व नहीं करना चाहिये।

सुत्तनिपात में ही उन्होंने यह कहा कि न कोई जाति से वृषल होता है न कोई कर्म से ब्राह्मण। मनुष्य

कर्म से वृषल होता है और कर्म से ही ब्राह्मण।¹¹

इसी सम्बन्ध में उन्होंने सोपाक नामक चाण्डालपुत्र मातङ्ग का उल्लेख किया है और उसके यशस्वी कर्मों का वर्णन करते हये यह बताया है कि उसके बहुत से शिष्य क्षत्रिय तथा ब्राह्मण थे। वह काम और राग का दमन कर शुद्ध महापथ में दिव्य यान पर आरुढ़ (सवार) होकर ब्रह्मलोक गया।¹² उनका यह दृष्टिकोण है कि जाति के कारण उसे ब्रह्मलोक में जाने से नहीं रोका गया। इसी सम्बन्ध में उन्होंने एक अन्य उदाहरण दिया है बल और वीर्य जिस युवक में है उसी को राजा युद्ध के लिये नियुक्त करता है, जाति के कारण नहीं।¹³ उनके विचारों से जाति, वर्ण आदि का कोई महत्व नहीं है, वे मानवमात्र की एक ही जाति मानते थे। उन्होंने प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेमभाव बढ़ाने के अथक प्रयास किया। उनका कहना था कि-

"माता यथा नियं पुत्रं आयुसा एकपुत्तमनुरवरत्रे।"

एवं पि सव्वभूतेतु, मानसं भावये अपरिमाणं।"¹⁴

(जिस प्रकार माता अपनी जान की अपेक्षा (परवाह) न कर अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है उसी प्रकार हमें सभी प्राणिमात्र की रक्षा करनी चाहिये।) उन्होंने धन संग्रह से ज्यादा दान देने पर बल दिया था। उन्होंने माघ माणवक से कहा है- "माणवक। जो धर्म से धन लाभकर, धर्म से धन प्राप्त कर एक को भी देता है, दो को भी देता है... सौ को भी देता है वह बहुत पुण्य कमाता है।"¹⁵ इस उद्धरण से यह परिलक्षित होता है कि भगवान् बुद्ध धर्म से धनसंग्रह को ही महत्व देते हैं और दान देने के लिए लोगों को प्रोत्साहित भी करते हैं।

संयुक्तनिकाय के साधुसुत्त में बुद्ध द्वारा दान

की महत्ता का प्रतिपादन किया गया। इस सुक्त में देवताओं द्वारा कहा जाता है कि-

"भगवन्! दान कर्म बहुत उत्तम है।

धर्म से कमाये गये का भी दान उत्तम है"।

देवताओं के इस कथन को भगवान् द्वारा समर्थन प्राप्त होता है।

वे समाज में धन का उपयोग दान देने में मानते हैं। धन मनुष्य के लिये मुख्य नहीं, अपितु उसका उचित उपयोग ही मुख्य है। कंजूसी करने वाला सदैव भयभीत रहता है वह जीवन में सफल नहीं होता।

उपसंहार - उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध के समय में भारतीय समाज विभिन्न वर्णों और जातियों में विभक्त था, जिनमें ब्राह्मणों का वर्ण सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। ब्राह्मणों को इस बात का बहुत अभिमान था कि वे श्रेष्ठ वर्ण में उत्पन्न हुए हैं। इस कारण वे अन्य वर्णों के लोगों को हेय समझते थे। इसी प्रकार शूद्र वर्ण के लोग बाह्य, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों द्वारा हेय दृष्टि से देखे जाते थे। किन्तु वर्ण-सम्बद्ध यह मान्यता सनातन नहीं थी। गौतम बुद्ध ने स्वयं स्पष्ट किया था कि वर्णों का आधार कर्म है। जन्म नहीं। अर्थात् ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता, अपितु वह जिस प्रकार का कर्म करेगा उसका वही वर्ण माना जायगा।

गौतम बुद्ध की यह धारणा वस्तुतः वैदिककालीन धारणा थी। वैदिकयुगीन भारतीय समाज कर्मों के अनुसार वर्णों में विभक्त था। ब्राह्मणों का कर्म आध्यात्मिक साधना तथा ज्ञान का प्रसार करना था। क्षत्रिय का कार्य पौरुषसम्पन्न होकर शत्रुओं

से युद्ध करना, समाज का संरक्षण तथा शासन करना था। वैश्य का कार्य वाणिज्य द्वारा धनोपार्जन करना एवं दान करना था। शूद्र का कर्म शारीरिक श्रम द्वारा उत्पादन करना एवं सेवा कार्य का करना था। किन्तु ये सभी कर्म वैकल्पिक थे। कोई व्यक्ति जन्म से ही विशेष वर्ण का नहीं हो जाता था। जो जिस वर्ण का कर्म करता था उसी वर्ण में उसकी गणना की जाती थी। इन वर्णों के अन्तर्गत अनेक व्यवसाय प्रचलित थे जिनके कारण पृथक पृथक जातियों का विभाजन हो गया। ये जातियां भी जन्मना नहीं थी।

किन्तु यह स्थिति कालान्तर में परिवर्तित होती ही गयी। गौतम बुद्ध के समय तक वर्ण एवं जाति सम्बन्धी मान्यता में आमूल परिवर्तन हो गया। अब वर्ण एवं जाति को जन्मना माने जाने लगा था, इस कारण सामाजिक विघटन का विकृत रूप दिखायी पड़ने लगा। गौतम बुद्ध को इन्हीं विघटनकारी शक्तियों का विरोध करना पड़ा। ब्राह्मणों की 'जन्मना श्रेष्ठता' की अवधारणा नष्ट करने के लिये गौतम बुद्ध ने सतत प्रयास किया। उन्होंने 'ब्राह्मण' की वास्तविक परिभाषा बताते हुए ब्राह्मणों के मिथ्या भ्रम को दूर करने का भी प्रयास किया।

भगवान् द्वारा क्षत्रिय की श्रेष्ठता मानने का कारण-

यही नहीं, उन्होंने विभिन्न वर्णों की परिगणना करते समय पहला स्थान क्षत्रिय को दिया। इसका कारण यह था कि गौतम बुद्ध के समय में ब्रह्मज्ञान की विद्या ब्राह्मणों के हाथ से निकल कर क्षत्रियों के हाथ में आ गयी थी। इस काल में क्षत्रिय शासन के साथ-साथ समाज के संरक्षण का भी काम करता था। वह याज्ञिक कर्मकाण्डों के स्थान पर शुद्ध

चिन्तनमूलक ब्रह्मज्ञान का उपदेशक बन गया था। फलतः गौतम बुद्ध ने समाज में क्षत्रिय वर्ण को प्रथम स्थान दिया है। उन्होंने अनेक स्थलों पर विभिन्न वर्षों के कर्मों का निरूपण करते हुए उन्होंने अपने समकालीन समाज की वर्ण एवं जाति व्यवस्था के प्रति गहरा असन्तोष व्यक्त किया है।

उनके जीवनव्यापी समाज-सुधार सम्बन्धी आन्दोलन का यह परिणाम हुआ था कि ब्राह्मणों द्वारा स्थापित इस कृत्रिम वर्ण व्यवस्था की नींव हिल गयी। गौतम बुद्ध ने अपने सङ्घ में सभी वर्णों और जातियों के लोगों को सम्मिलित किया। सङ्घ के नियमों के अनुसार सङ्घ के सभी सदस्यों को समान अधिकार प्राप्त थे। बुद्ध के उपदेशों के प्रभाव से अनेक विद्वान् ब्राह्मण भी न केवल सङ्घ में सम्मिलित हुए, अपितु उनके निकटतम अन्तेवासी शिष्य बन गये। ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य वर्णों एवं जातियों के लोग सङ्घ में दीक्षित होते थे, जिसका प्रमाण अङ्गुत्तरनिकाय में है।

गौतम बुद्ध अपने सङ्घ के साथ जिस मार्ग से यात्रा करते थे उस मार्ग पर पड़ने वाले जनपदों, नगरों और ग्रामों के मनुष्य एकत्र होकर उनका उपदेश सुनते थे तथा उनसे उनके धर्म में सामूहिक रूप से प्रव्रज्या ग्रहण करते थे। इनमें सभी वर्णों के लोग हुआ करते थे। लगभग आधी शताब्दी तक गौतम बुद्ध का यह आन्दोलन अनवरत क्रम से चलता रहा। उनके महापरिनिर्बान के बाद तो बौद्ध धर्म और भी तीव्र गति से विकास करने लगा और यह अशोक का शासनकाल आते आते समस्त भारत का प्रधान धर्म बन गया। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्ण-व्यवस्था

का स्वरूप पूर्णतः उलझा हुआ और अस्पष्ट ही बना रहा।

यद्यपि वर्णव्यवस्था बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव के बाद भी पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकी, किन्तु उसका वह कठोर रूप, जो गौतम बुद्ध के पहले था, बाद में नहीं रह गया। बौद्ध प्रभाव के कारण ही यूनानी, शक, हूण आदि विदेशी जातियों के लोग भारतीय समाज में अन्तर्भूत होकर किसी न किसी वर्ण में सम्मिलित हो गये। इस तरह हमें मानना पड़ता है कि गौतम बुद्ध की मान्यताओं का भी वर्णव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

संदर्भ सूची :

1. अनुत्तरनिकाय, तीसरा निपात, पृष्ठ-110
2. मज्झिमनिकाय, वासेट्टु, बाले पृष्ठ-413-14
3. संयुत्तनिकाय 7/1/9, पृष्ठ 134-35
4. दिव्यावदान 323/14
5. वही, 323/3-6, 327/17-20।
6. मज्झिमनिकाय, एसुकारि सुत्त, पृष्ठ 404।
7. मज्झिमनिकाय, पृष्ठ 405
8. संयुत्तनिकाय, सुन्दारिक सुत्त, 139
9. मज्झिमनिकाय, पृष्ठ 405
10. सुत्तनिपात, पराभव सुत्त, गाथा 14, पृष्ठ 23
11. सुत्तनिपात, बसलसुत्त, पृष्ठ 27, 21
12. सुत्तनिपात, बसलसुत्त, पृष्ठ 28-29
13. संयुत्तनिकाय, तीसरा परिच्छेद तृतीय वर्ग, पृष्ठ 86
14. सुत्तनिपात, मेतसुत्त, पृष्ठ 31
15. सुत्तनिपात, माघसुत्त, पृष्ठ 99